विकलांगता तथा डिजिटल दुनियां: 'ह्यूमन' वेब सीरीज के सन्दर्भ में

माधवी

वर्ष 2018 में यूनाइटेड किंगडम के शेफ़ील्ड यूनिवर्सिटी में विकलांगता विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। दुनियां के विभिन्न देशों के विद्वानों तथा शोधार्थियों ने इसमें हिस्सा लिया। खास बात यह थी कि बड़ी संख्या में विद्वानों (जो स्वयं विकलांग थे) ने विकलांगता के नए मायने तथा अपनी संवेदनाओं को प्रस्तुत किया। इस संगोष्ठी ने मुझे बहुत प्रभावित किया और तभी से इस विषय में मेरी रूचि और अधिक बढ़ गयी। प्रस्तुत लेख इस विषय में मेरे शोध का ही एक चरण है ।

वर्तमान समय में डिजिटल दुनियां ने विकलांगता के प्रति हमारी सोच को और अधिक विस्तृत तथा संवेदनशील बनाने का प्रयास किया है। हाल ही में हॉटस्टार पर 'ह्यूमन' नाम की वेब सीरीज का प्रसारण किया गया, जिसमें भोपाल गैस त्रासदी द्वारा उत्पन्न कृत्रिम विकलागंता के साथ ही आनुवंशिक विकलांगता, इसके वर्तमान प्रभाव, बेरोजगारी और मानसिक पीड़ा को उद्घाटित किया गया है। वेब सीरीज यह भी दर्शाने का प्रयास करता है कि इस त्रासदी का उच्च वर्ग और निम्न वर्ग पर क्या प्रभाव पड़ा। सामाजिक विज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण हम किसी न किसी रूप में इस त्रासदी का अधययन/अध्यापन करते ही हैं। इसी क्रम में इस त्रासदी का डिजिटल रूपांतरण नए प्रश्नों और मुद्दों को समाज के सामने लाने का प्रयास करता है। यदि हम एक सरसरी नजर इतिहास तथा रुपहले परदे पर विकलांगता की चित्रण पर डाले तो हम कुछ निम्न तथ्य पाते है।

विकलांग और विकलांगता के प्रति नजरिया: एक अवलोकन

इतिहास के पन्नों में 'विकलांगों' के साथ किये गए अमानवीय व्यवहार के कई उदाहरण मौजूद हैं। विकलांगों को अक्सर एक पृथक श्रेणी में रखा गया उन लोगों से जो सामाजिक मानदंडों के अनुरूप या फिट होते हैं। निम्नलिखित सूची उन अनुचित व्यवहारों में से कुछ को रेखांकित करती है जो इतिहास के विभिन्न समाजों द्वारा स्वीकार्य थे:

• प्राचीन ग्रीस में विकलांगों को जंगल में छोड़ा गया या उन्हें मार दिया गया|

• रोमन साम्राज्य के दरबारों में कुलीन वर्गों के मनोरंजन के लिए विदूषक के रूप में विकलांगों को रखा गया।

• पुनर्जागरण के दौरान उन्हें शिशुहत्या जैसे अनुभवी कार्य के लिए नियुक्त किया गया।

• स्पेन में जला कर या पानी में डूबा कर मार दिया गया।

• 1601 में महारानी एलिजाबेथ की सरकार ने गरीबों को तीन समूहों में विभाजित किया। इसके अंतर्गत विकलांग गरीबों को "असहाय गरीब" वाले समूह में रखा गया था।

• प्रारंभिक औपनिवेशिक अमेरिका में यदि परिवार की तरफ से सहायक प्राप्त नहीं होती थी तो इन्हें सुधारक संस्थानों (गॉक) के तहखानों में रखा जाता था।

• उन्नीसवीं सदी के यूरोप में इन्हें अनाथालयों और शरणालयों में रखा जाता था । जहाँ इनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था।

• संयुक्त राज्य अमेरिका में इन्हें सार्वजानिक रूप से बाहर जाने नहीं दिया जाता था इन्हें सामुदायिक गतिविधियों से दूर रखा जाता था तथा परिवार द्वारा घर पर दी जाने वाली प्राथमिक देखभाल से ही काम चलाना पड़ता था।

• 1848 में मैसाचुसेट्स में "इंस्टीट्यूट फॉर इडियट्स" की स्थापना की गई, यू.एस. के संस्थानों में स्टॉफ कि कमी के कारण उन्हें उनके बिस्तरों से बांध कर रखा जाता था।

• 1907 में संयुक्त राज्य अमेरिका में जबरन नसबंदी की गयी ताकि वे अपनी विकलांगता से नयी पीढ़ी को प्रभावित न कर सकें और अपने जैसे और पैदा न कर सकें।

• नाज़ी जर्मनी में गैस, नशा, रक्तदान, और इच्छामृत्यु जैसे वैज्ञानिक तथा अवैज्ञानिक साधनों का इस्तेमाल उन से छुटकारा पाने के लिए किया गया ।

• दुनिया भर में विकलांगों को अलग-अलग संस्थानों में रखा गया, उन्हें स्कूलों में जाने की अनुमति नहीं थी।

• उन पर एकांतवास की नीतियों को जबरन थोपा गया तथा कई प्रतिबंध लगाये गए।

• प्रचलित दुर्व्यवहार (शारीरिक, मानसिक, यौन, वित्तीय) जैसे अमानवीय व्यवहार से पीड़ित होना पड़ा।

• उनके जीवन का अवमूल्यन हुआ यहाँ तक कि अपराधियों के रूप में कलंकित किया गया (घई, 2015)|

भारत कोई अपवाद नहीं है बल्कि यहाँ भी विकलांगों और विकलांगता के प्रति यही नजरिया रहा है | अक्सर इसे कर्मों का फल, बुराई तो कभी पाप और पापी के रूप में परिभाषित किया गया है और अवांछित समझा गया है। सहानुभुति न केवल विकलांग व्यक्ति के प्रति दिखाई जाती है बल्कि उन परिवारों के प्रति भी जिनका वो हिस्सा होते हैं। शायद इसी वजह से हमारे देश में माता-पिता को एक विकलांग बच्चे को जन्म देने या न देने का क़ानूनी अधिकार प्राप्त है| विकलांगों के अधिकारों की मांग करने वाली कार्यकर्ता तथा अकादमिक शोधकर्ता अनीता घई का कहना है की भारत में विकलांगता की कोई सुसंगत परिभाषा मौजूद नहीं है, इस कारणवश विकलांगता की अंतर्निहित समझ विकलांगता के चिकित्सा मॉडल के ढांचे के भीतर ही बनी हुई है। जो विकलांगों को सामान्य से 'अन्य' तथा दोषपूर्ण श्रेणी में रखता है। घई का मानना है कि विकलांगता एक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक प्रवृति है न कि अक्षमता अथवा अयोग्यता की।[1] हाल ही में भारत में विकलांगों के लिए एक नए शब्द ' दिव्यांग' को अपनाने पर बल दिया है जिसका अर्थ है कि उनकी शारीरिक कमी को पूरा करने के लिए प्रकृति ने उन्हें विशेष शक्तियों से नवाज़ा है जिस कारण उन्हें विकलांग कहना अनुचित है।

1980 के दशक में भारतीय समाज में विकलांग तथा विकलांगता के प्रति नजरिये पर एक बहस छिड़ी जिसका नतीजा यह हुआ कि समाज में उन्हें उनका हक़ दिलाने के लिए भारत सरकार ने 1995 में बिल पास किया। लेकिन सामाजिक तथा सांस्कृतिक समान अवसर हासिल करने की यह लड़ाई बहुत लम्बी जान पड़ती है। अक्सर ही विकलांगों की अप्रतिम प्रतिभा को न केवल स्वीकारा, सराहा जाता है बल्कि मिसाल के योग्य समझा जाता है, प्रेरणा स्त्रोत के रूप में स्थापित किया जाता है। लेकिन मिसाल कायम करने की उनसे अनकही अपेक्षा भी स्थापित हो

जाती है। यदि आप इस तरह से 'कमतर' हैं तो उदाहरण योग्य बन जाइये तो आप को स्वीकृति मिल जायेगी। अब यह अपेक्षा रखना कहाँ तक सही है, अथवा उन्हें अपने होने का आभास कराने के लिए इस अंधी दौड़ में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित करना कितना अर्थपूर्ण है यह भी विचारणीय है|

भारतीय सिनेमा तथा विकलांगता का चित्रांकन

भारतीय सिनेमा जगत ने कई रूपों में बार-बार समाज में इनके प्रति सोच और समझ को बखुबी पर्दे पर उतारा है| फिर वह 'कोशिश' जैसी फिल्म हो जिसमे मूक - बधिर दाम्पत्य जोड़े के जीवन के संभवतः सभी पहलुओं को दर्शाया गया है जैसे प्रेम, तनाव, हताशा, लोगों का उनके प्रति उपेक्षित भाव और तमाम दुविधाओं को झेलते हुए जीवन के प्रति सकारत्मक सोच हो या अपने जैसे लोगों को अपनाने की बात हो। दूसरी और हम 'स्पर्श' जैसी फिल्मों का उदाहरण ले सकते हैं जिसमें नायक देखने में असमर्थ है| फिल्म में नायक अनिरुद्ध को एक आत्मनिर्भर पर कमजोर भी, स्वाभिमानी लेकिन निष्ठुर भी, समझदार भी लेकिन नासमझ भी चित्रित किया गया है| वहीँ फिल्म की नायिका एक विधवा बेसहारा स्त्री है, जिस कारण उस पर अनेक असमर्थताएँ स्वतः ही लागु हो जाती हैं। फिल्म की खासियत यह है कि इसमें शारीरिक अक्षमता को सामाजिक और सांस्कृतिक अक्षमता से जोड़ कर दिखाया गया है। नायक शारीरिक अक्षमता के कारण उसके प्रति प्रेम और समर्पण को सहानुभुति और बलिदान के रूप में देख कर उस प्रेम को स्वीकार नहीं करता है। प्रश्न यह उठता है कि एक बेसहारा विधवा देखने में असमर्थ प्रेमी को अपनाकर उस पर अहसान करती है या एक दृष्टिविहीन प्रेमी एक विधवा बेसहारा समाज में अवांछित स्त्री को अपनाकर उस पर अहसान करता है?

कोशिश, स्पर्श, ब्लैक, तारे जमीं पर, माई नेम इज़ खान, स्काई इज़ पिंक इत्यादि फिल्मों ने समाज में 'अक्षमता ' या 'अयोग्यता' के प्रति संवेदनाओं का निर्माण किया है और जागरूकता भी पैदा की है।

रुपहले परदे पर उपर्युक्त चित्रण के अतिरिक्त कुछ अन्य भूमिकाओं में भी विकलांगों को दर्शाया गया है, कभी उनका इस्तेमाल मनोरंजन की दृष्टि से किया गया है या फिर यूँ कहिये कि विकलांगों कि विवशता को मजाक के रूप में परोसा गया है जैसे राजा बाबू में नंदू का चरित्र, गोलमाल में लकी गिल का चरित्र इत्यादि|

ऐसा भी देखा गया है कि आमतौर पर विकलांगता को फिल्मी किरदारों में सकारात्मक या नकारात्मक श्रेणी में बाँट दिया जाता है। एक तरफ सकारात्मक विकलांग किरदारों को स्वतंत्रता, आत्मविश्वास, दृढ़ संकल्प, भावनात्मक, मददगार, महत्वाकांक्षी, प्रफुल्लता आदि रूप में दर्शाया जाता है। वहीँ दूसरी तरफ नकारात्मक चरित्रों को अक्सर उदास, निराश, ईर्ष्यालु, चालाक, चतुर, आपराधिक गतिविधियों में लिप्त दिखाया गया है। इस तरह का चित्रण भी समाज में विकलांगो के प्रति दोषपूर्ण सोच को निर्मित करने का प्रयास है।

भोपाल गैस त्रासदी: असीम अवसाद

2-3 दिसंबर, 1984 की रात भोपाल में यूनियन कार्बाइड कंपनी के प्लांट से मिथाइल आइसोसाइनाइट गैस का रिसाव हुआ था। इस घटना में हज़ारों लोगों की मौत हो गई थीं और लाखों लोग इससे प्रभावित हुए थे। रिसाव की घटना पूरी तरह से कंपनी की लापरवाही के कारण हुई थी, पहले भी कई बार रिसाव की घटनाएँ हुई थीं, लेकिन कंपनी ने सुरक्षा के समुचित उपाय नहीं किये थे।

यह कम्पनी एम्. आई. सी. बनाती थी जिसका इस्तेमाल कीटनाशक बनाने के लिए किया जाता था, 42 टन एम्. आई. सी. कम्पनी में स्टोर करके रखा जाता था। एम्

आई सी पानी के साथ मिलकर और भी अधिक आक्रामक रसायन में बदल जाता है। शहर के बीचोंबीच इसकी उपस्थिति बम से कम नहीं थी। हजारों की तादाद में स्थानीय निवासियों ने इसमें रोजगार के अवसर ढूंढें, उन्हें बस इतनी जानकारी थी कि इसमें खतरा है| खतरा क्या है इसके प्रभाव क्या और कहाँ तक हो सकते हैं इसकी जानकारी उन्हें नहीं थी और न ही उपलब्ध कराने की कोशिश की गयी थी।

2-3 दिसंबर, 1984 की मध्य रात्रि को लोगों को न रुकने वाली भयावह खांसी के साथ साँस लेने में दिक्क्त की समस्या की शुरुवात हुई। जिसने तुरंत ही एक विकराल रूप धारण किया और हजारों लोगों की मौत का कारण बन गया, पीड़ितों ने महसूस किया उनकी त्वचा शरीर से अलग हो रही है, आँख सफ़ेद होने लगी और मौत के एक भयानक मंज़र ने शीघ्र पैर पसारना शुरू किया, और पूरे भोपाल को इसने अपने पंजों में जकड़ लिया। पीड़ा और सम्भवतः मौत से बचने के लिए लोग तालाबों और पानी के अन्य स्त्रोंतों से स्वयं को धोने लगे जिससे वो जहरीली गैस उनके शरीर को छोड़ दे, लेकिन एम्. आई. सी. तब तक पानी के सभी स्त्रोंतो को तेज़ाब में तब्दील कर चुका था | तालाब लाशों से भर गए थे। पांच बजे सुबह तक चारों तरफ लाश ही लाश नजर आ रहे थे। गलियां, सड़क, तालाब रेलवे स्टेशन, सब जगह लाश ही लाश दिखाई देती थी। कई लोग जान बचाकर शहर से भागने में ही समझदारी समझ रहे थे, लेकिन वे भी नहीं बच सके। इस घटना से लाखों लोग न केवल संक्रमित हुए, बल्कि आने वाली पीढ़ी के लिए इसने ' विकलांगता की श्रृंखला" तैयार कर दी। घटना के सत्तर घंटों के भीतर लगभग दस हजार लोग काल के गाल में समा गए। त्रासदी के पीड़ितों की आवाज में कहें तो बदनसीब वो हैं जो उस दिन मौत से तो बच गए लेकिन संक्रमित होने के कारण रोज थोड़ा - थोड़ा मरने के लिए मजबूर हैं।'

घटना के बाद पीड़ितों को तुरंत राहत तथा मुआवजा दिलाने के प्रयास आरम्भ किये गए। कई गैर सरकारी संगठनों तथा कार्यकर्ताओं ने पीड़ितों को उनका हक़ दिलाने और उनकी आवाज बनने का प्रयास किया। सरकार द्वारा समिति का गठन किया गया जिसका कार्य घटना का अध्ययन करना तथा मुआवजे की रकम तय करना था। इस विशेषज्ञ समिति में 'अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान' राष्ट्रीय पर्यावरणीय स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान तथा भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के वैज्ञानिक शामिल थे।

भोपाल गैस त्रासदी से प्रभावित पीड़ितों के लिये कार्य कर रहे कुछ संगठनों ने यह आरोप लगाया कि इस समिति द्वारा किये गए शोध में कुछ गलतियाँ हैं। कार्यकर्ताओं ने सुचना का अधिकार के अधिनियम, 2005 के तहत इस शोध से संबंधित रिपोर्ट को हासिल किया। समिति द्वारा शोध की कार्यप्रणाली में बहुत खामियाँ थीं जिस कारण इसके निष्कर्ष भी अनिर्णायक रहे। सर्वोच्च न्यायालय ने इस संदर्भ में एक पुनर्विचार याचिका स्वीकार की है जिसमें इस घटना से प्रभावित लोगों के लिये अधिक मुआवज़े की मांग की गई है| इस मामले में बच्चों में जन्मजात विकृतियों से संबंधित आँकड़े पीड़ितों को मुआवज़ा दिलाने के लिये महत्वपूर्ण मुद्दा है ।[2]

विशेषज्ञ समिति द्वारा किये गए इस शोध में यह बात सामने आई है कि सामान्य गर्भवती महिलाओं की तुलना में वर्ष 1984 के भोपाल गैस त्रासदी से पीड़ित महिलाओं और उनसे जन्म लेने वाले बच्चों में कई तरह की स्वास्थ्य सम्बन्धित कमियाँ पाई गईं तथा इन बच्चों में अधिकतर 'जन्मजात विकृति' से प्रभावित हैं ।

इस शोध के अनुसार, भोपाल गैस त्रासदी से प्रभावित गर्भवती महिलाओं से जन्मे 1048 बच्चों में से 9 प्रतिशत में कई जन्मजात स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ विद्यमान

थीं। इसके विपरीत 1247 सामान्य गर्भवती महिलाओं से जन्मे बच्चों में यह समस्याएँ केवल 1.3 प्रतिशत में पाई गई। इन विकृतियों से प्रभावित होने बच्चों में भोपाल गैस त्रासदी से प्रभावित गर्भवती महिलाओं की अगली पीढ़ी के भी बच्चे शामिल हैं ।

भोपाल की ऐसी त्रासदी को ह्यूमन वेब सीरीज में बड़े मार्मिक ढंग से दर्शाया गया है

यद्यपि ह्यूमन वेब सीरीज छोटी बड़ी कई कहानियों का एक ताना-बाना है, लेकिन हमारा सरोकार यहाँ कुछ चरित्रों तथा उन मुद्दों से है जो इसे भोपाल गैस त्रासदी से जोड़ती है और विकलांगता के प्रतिमानों को चिन्हित करती है|

जान बचाने की कीमत कितनी जानें होती हैं?

रोजगार के अभाव में व्यक्ति अपनी भूख और अपने परिवार का पेट पालने के लिए स्वयं को नई निर्मित दवाइयों के मानवीय परीक्षण के लिए उपलब्ध कराता है, यह किसी भी गरीब समाज की व्यथा हो सकती है। हालांकि इस परीक्षण के और भी कई पहलु हो सकते हैं।

ह्यूमन वेब सीरीज में भी भोपाल के लोगों पर होने वाले ड्रग्स ट्रायल को दर्शाया गया है लेकिन इसमें परोपकार, वीरता जैसे विशेषणों का अभाव है, बल्कि यह विवशता और ड्रग ट्रायल्स के बीच के संबंधों को दर्शाता है। यह ड्रग ट्रायल्स भोपाल गैस त्रासदी पीड़ितों पर किया जा रहा है । नौकरी के अभाव में उनमें से कुछ लोग अपनी सहमति से ऐसा करते हुए नजर आते हैं क्योंकि गरीबी है, लाचारी है, और उन पर अपने परिवार के गुजर बसर की जिम्मेदारी है। वेब सीरीज यहाँ एक मुख्य मुद्दा यह उठाती है कि त्रासदी के कारण संक्रमितों की पीढ़ी दर पीढ़ी 'शारीरिक विकृति' का शिकार हो चुकी है, जिस वजह से वे कार्य करने में सक्षम भी नहीं हैं

और उन्हें कोई रोजगार भी नहीं देता हैं | संक्रमितों का डी. एन. ए. ही 'दूषित' हो गया है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित कर रहा है। क्या विश्व की इस भयानक ओद्योगिक त्रासदी से निर्मित 'डिफेक्टिव' डी. एन. ए. को दुरुस्त किया जा सकता है?

सीरीज में ड्रग ट्रायल्स के एक और पहलु को भी दर्शाया गया है जहाँ पीड़ितों को उनके करीबियों या बिचौलियों के द्वारा ट्रायल कैंप तक पहुँचाया जाता हैं, जिस बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं होती है। इन अनभिज्ञों को बरगलाया जाता है, उन्हें अक्सर दवाइयों के स्वभाविक दुष्परिणाम बताये ही नहीं जाते हैं। बिचौलिये अपने फायदे के लिए इनका इस्तेमाल करते हैं। सीरीज में मंगू नाम के चरित्र की माँ के साथ ऐसा ही होता है, मधुमेह की दवाई का उपयोग ट्रायल से पहले शरीर में ग्लुकोस के स्तर को संतुलित करने की लिए किया जाता है जिससे ट्रायल बिना किसी रुकावट के हो सके (पीड़िता को अपने बेटे मंगू द्वारा ही कैंप तक लाया जाता है जो कि लाशों की पोस्टमार्टम का काम करता है और उससे निकल कर अपने लिए एक सुनहरे भविष्य का सपना देखता है। इसी सुनहरे भविष्य के खातिर वह ड्रग ट्रायल्स में अपने परिवार कि सदस्यों को शामिल कर लेता है जिसके बदले में उसे केवल दस हजार रूपये का सहारा दिखया जाता है। एक इंजेक्शन कि बदले में दस हजार रूपये उसे बहुत सस्ता और बढ़ियां सौदा महसूस होता है।)| इसका असर बाद में दुष्परिणाम के रूप में सामने आता है, क्योंकि ट्रायल ऐसी दवाई का किया जा रहा है जो अवैध हैं, इसलिए कैंप के बाहर दवाई की कोई जानकारी नहीं है, इसे गोपनीय रखा जाता है जिस वजह से इसका कोई तोड़ भी नहीं हासिल हो पाता है और आखिकार पीड़िता को इस गोपनीयता की कीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ती है।

ड्रग ट्रायल्स के इस अवैध धंधे में डॉक्टर, दवाई बनाने वाली कंपनियां और राजनीतियो भी शामिल हैं। जान बचाने वाली दवाई के निर्माण में ड्रग्स ट्रायल वांछनीय है लेकिन

इसके लिए किस शरीर का इस्तेमाल किया जायेगा यह एक डरावना प्रश्न है। 19 वीं शताब्दी की शुरुआत में जब ऐलोपैथिक दवाइयों का विकास अपने शैशवास्था में था तो दासों/'काली चमड़ी' के लोगों का जबरन इस्तेमाल इस नेक कार्य के लिए किया गया उसके बाद जहाजों पर गिरमिटियों के शरीर पर भी इस तरह के रिसर्च कार्य किये गए। वर्तमान में ह्यूमन वेब सीरीज में जर्मन दवा कम्पनी और भारतीय डॉक्टर्स, राजनीतिज्ञ की भोपाल के त्रासदी ग्रस्त लोगों की खोज की कल्पना 'इस अत्यंत परोपकारी कार्य के लिए' अत्यंत रोमांचकारी है।

त्रासदी तथा मानसिक अवसाद

भोपाल गैस त्रासदी से उत्पन्न संकट के बारे में अक्सर ही किताबों में, सामचार पत्रों में, पत्रिकाओं इत्यादि में इस घटना और इसके दुष्परिणामों का काफी कुछ सिलसिलेवार वर्णन मिल जाता है। घटना के बाद मुआवजे की लड़ाई और इससे जुड़े अन्य मुद्दे भी आये दिन खबरों में देखने को मिल जाता है। इस वेब सीरीज की खास बात यह है की इसमें त्रासदी से जुड़े मानसिक अवसाद और इसके दूरगामी परिणामों को भी रेखाँकित करने का प्रयास किया गया है। सीरीज का एक चरित्र डॉक्टर गौरी नाथ, जो कि भोपाल से बाहर यात्रा के कारण दुर्घटना से बच जाती है, दुर्घटना में अपने माता- पिता को खो देती है और उस दिन वो मामूली से भाग्यशाली बन जाती है क्योंकि वो इस त्रासदी से उस रात बच जाती है। उसे अपने माता-पिता के शरीर को हासिल करने के लिए लाशों की एक भीड़ से गुजरना पड़ता है। उसके पिता के मरणोपरांत उसके दादा का घर जो उसका नया घर बनता है, उसकी गरीबी और निम्न हैसियत के कारण उसे आसरा तो देता है लेकिन उसे अपना नहीं पाते है। यहाँ उसे शारीरिक उत्पीड़न का भी सामना करना पड़ता है। उसका बचपन उत्पीड़न और अवसाद में गुजरता है, जो उसे एक ऐसी मानसिक पीड़ा देता है जिससे निजात

पाने के लिए उसे अपनी पैंतालिस वर्ष की आयु में भी सिरिंज तथा दवाइयों का सहारा लेना पड़ता है।

अवसाद की यह कड़ी उसे एक ऐसे व्यक्ति में तब्दील कर देती है जो महत्वकांक्षी है और हैसियत और शोहरत पाने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है। वह सवालिया अंदाज़ में कहती है 'गरीब लोगों की ज़िंदगी की क्या वैल्यू है... जीरो |' जिन्हें वह प्रतिबंधित दवाइयों के ट्रायल्स के लिए इस्तेमाल करती है, और यदि इस ट्रायल में उन्हें अपनी जिंदगी से हाथ भी धोना पड़ता है तो डॉक्टर गौरी नाथ को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि इन गरीब लोगों को "गिनी पिग" की तरह इस्तेमाल किया जाता है।

अवसाद और गौरी नाथ का सफर यहीं खत्म नहीं होता है बल्कि यह सिलसिलेवार उसे एक ऐसे डॉक्टर के रूप में परवर्तित करता है जो अवसाद के तोड़ के रूप में दवाइयों के निर्माण में जुट जाती है, उसे यह दवाई अपने और अपने जैसे अन्य के लिए भी चाहिए। इस तरह की दवाइयों के ह्यूमन ट्रायल्स के लिए उसे नौजवान लड़कियों की तलाश है, जो कि शारीरिक और मानसिक अवसाद का शिकार हों। जिससे कि उन पर इन दवाइयों की प्रतिक्रिया को परखा जा सके और दवाइयों के सफल प्रयोग सम्भव हो सके। गौरी नाथ के शब्दों में ऐसी (अवसाद ग्रसित) लड़कियों की कमी नहीं है शहर में, हर गली चौराहे पर ये मिल जायेंगीं। सीरीज में दर्शाया गया है कि किस तरह से इन दवाइयों के प्रयोग से शरीर में हार्मोनल परिवर्तन होते हैं और अवसाद ग्रस्त ये लड़कियां न चाहते हुई भी विषम परिस्थितियों में हंसने के लिए विवश हैं। उन पर भी इन दवाइयों का ट्रायल उनकी बिना सहमति के, साजिश के तहत किया जाता है।

इस तरह ड्रग ट्रायल्स की ये मांग भोपाल में एक ही समय में दो प्रकार के ड्रग ट्रायल्स की कहानी बयां करता है| एक, जहाँ त्रासदी पीड़ित व्यक्तियों का 'गिनी पिग'

की तरह इस्तेमाल हो रहा है दूसरा एक खास दवाई की जरूरत के तहत अवसाद ग्रस्त लड़कियों का इस्तेमाल किया जा रहा है।

त्रासदी का डिजिटलाइज़ेशन तथा संवेदनाओं के मोल

समसामयिक काल में मानव की क्रिएटिविटी को निखारने में संवेदनाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। फिर चाहे वह पेंटिंग हो, फोटोग्राफी हो, स्थापत्य कला हो या चलचित्र। दृश्य रचनात्मकता जब भावनाओं को छूती हैं, तो बड़ी सरलता से सीधा दिल तक पहुँचने का काम करती है और देश विदेश की सीमा रेखा से परे भावनाओं को एक मूर्त रूप और भाषा देती है। उपर्युक्त वर्णित सीरीज में भी रचनात्मकता और संवेदनाओं के परस्पर मेल को दर्शाया गया है लेकिन एक तीखे अंदाज़ में। भोपाल गैस त्रासदी और इसी तरह की अनेक त्रासदियों से संक्रमित व्यक्तियों की वर्तमान पीढ़ी और उनके विकृत या 'टेढ़े-मेढ़े' शरीर के अंगों का नुमाइश और प्रलेखन वर्तमान समय की मांग और जरूरत दोनों बन गयी है।

ह्यूमन वेब सीरीज में नील नामक चरित्र जो फोटोग्राफर है उसे भोपाल गैस त्रासदी के पीड़ितों के डॉक्यूमेंटेशन का प्रोजेक्ट मिला है। भोपाल में वह घर- घर जाकर वर्तमान समय में पीड़ितों पर त्रासदी के प्रभावों की तस्वीर निकालकर उसे अंतराष्ट्रीय स्तर पर दुनियां के सामने लाने का प्रयास करता है। एक स्वयंसेवक की मदद से वह कुछ पीड़ितों तक पहुँचता है, स्वयंसेवक उसे याद दिलाता है कि उनकी तस्वीर निकालने के बदले में वो पीड़ितों को कुछ पैसे दे। नील शिकायती लहज़े में कहता है कि लेकिन उसकी कम्पनी उन्हें पीड़ितों को देने के लिए पैसे नहीं देती है। स्वयंसेवक आइना दिखाते हुए कहता है कि 'अपनी कम्पनी से कहो कि अगर इनकी प्रदर्शनी लगाकर अंतराष्ट्रीय पुरुस्कार जीतना है तो पे तो करना होगा'। स्वयंसेवक पैसे की पेशकश को जायज़ ठहराते हुए यह भी याद दिलाता है कि त्रासदी की बिभीषिका के

कारण इन्हें रोजगार नहीं मिलता है... जानवरों के बाद इन पर ड्रग ट्रायल्स होते हैं ... ये ' वैल्युएबल यूथ' नहीं बन पाए ।

यहाँ एक सवाल और महत्वपूर्ण बन जाता है कि कौन स्वयं को पीड़ित के तौर पर देखता है और कौन स्वयं को सर्वाइवर (उत्तरजीवी) के तौर पर देखता है? यहाँ उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के लोगों के लिए त्रासदी के मायने अलग हो जाते हैं, जहां एक और गरीब स्वयं को पीड़ित के तौर पर देखते हैं वहीँ उच्च वर्ग के लोग स्वयं को इस संहार से बचने वाले उत्तरजीवी के तौर पर देखते हैं। नील जब डॉक्टर गौरी से पूछता है कि आप भी तो 'ट्रेजेडी विक्टिम' हैं जिस पर उसका जवाब होता है कि मैं अपने आपको विक्टिम नहीं मानती हूँ, मैं खुद को सर्वाइवर के रूप में देखती हूँ। सर्वाइवर शब्द में एक गर्व और विजेता का भाव है, जो गौरी के चरित्र को साधारण से अहम बना देता है और उसके व्यक्तित्व और महत्वाकांक्षा को पूरा करता है। त्रासदी की तबाही और इसका असर सबके लिए एक जैसा नहीं होता है, यद्यपि डॉक्टर गौरी स्वयं को त्रासदी की पीड़िता के रूप में नहीं देखती है, लेकिन यह कहना भी मुश्किल है कि वो इससे निकल चुकी है।

एक वेब सीरीज के रूप में 'ह्यूमन' भोपाल गैस से जुडी त्रासदी तथा इससे उत्पन्न विकलांगता की कहानी को बखूबी बयान करता है| लेकिन इसके साथ ही वर्तमान समय में इन पीड़ितों की स्थिति, समाज में इनकी महत्ता को व्यक्त करता है चाहे वह फिर 'गिनी पिग' के रूप में इनकी भूमिका ही क्यों न हो। जो समाज की, खासकर मेडिकल साइंस/दवाई निर्माता कम्पनी की भयावह जरूरत को दुनियां के सामने रखता है| और यहाँ सीरीज की ये लाइन कि जान बचाने कि कीमत कितनी जानें होती हैं ? सटीक बैठता है। प्रश्न यह भी उठता है कि क्या केवल शब्दाबली बदलने भर से नजरिये को बदला जा सकता है? हम विकलांग कहे या सूरदास, डिफरेंटली एबल या फिर दिव्यांग क्या समाज में इनकी स्थिति को बदला जा सकता

है? डिजिटल दुनियां की जिम्मेदारी समाज के इस संवेदनशील वहां तक ले जाने की है जहां चित्र ही ना हो समाधान भी प्रस्तुत हो।

संदर्भ सूची

1. अनीता घई, रीथिंकिंग *डिसेबिलिटी इन इंडिया*. नई दिल्ली: रोउटलेज, 2015.
2. अमीना शरीफ, *केस स्टडी फॉर भोपाल गैस ट्रेजेडी*, अगस्त 2020. DOI: 10.13140/RG.2.2.16473.75364 Conference: P.P. Savani University Conference
3. *ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ़ द भोपाल गैस ट्रेजेडी* (शार्ट डाक्यूमेंट्री) https://youtu.be/-hUxx8ZVDgQ Accessed on 12th October 2022.
4. ब्रिटैनिका, टी. इ., *भोपाल डिजास्टर*. नेशनल सेण्टर फॉर बायोटेक्नोलॉजी इनफार्मेशन, पबमेड सेंट्रल, 2020 Accessed on 12th October 2022 from https://www.britannica.com/event/Bhopal-disaster.
5. भोपाली, https://www.amazon.com/Bhopali-Van-Maximilian-Carlson/dp/B078X5CZWQ
6. द भोपाल डिजास्टर, सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट, https://cdn.cseindia.org/userfiles/THE%20BHOPAL%20DISASTER.pdf.

7. बारबरा दिनहम और सतीनाथ सारंगी, द भोपाल गैस ट्रेजेडी 1984 टू? द ईवेज़ण ऑफ़ कॉर्पोरेट रिस्पांसिबिलिटी, एनवायरनमेंट एंड अर्बनाइजेशन, वॉल्यूम 14 नंबर 1, अप्रैल 2002. pp.89-100.
8. द हिन्दू भोपाल गैस ट्रेजेडी: ए क्रोनोलॉजी ऑफ़ इवेंट्स, भोपाल/ नई दिल्ली, जून 7 2010.
9. [1]हिस्टोरिकल बैकग्राउंड ऑफ़ डिसैबिलिटीज, https://www.sagepub.com/sites/default/files/upm-binaries/26491_Chapter_1_Historical_Background_of_Disabilities.pdf, accessed on 12th October, 2022.
[1]अनीता घई, रीथिंकिंग डिसेबिलिटी इन इंडिया . नई दिल्ली : रोउटलेज , 2015. p. xxvi.